□□□□□□□□ □□□□□ □□□□

जनसत्ता 30 जुलाई, 2014 : प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी पूर्ववर्ती प्रधानमंत्रियों की तरह भारत से गरीबी मिटाने का संकल्प लिया है।

समाजवादी दौर में चले सरकारी प्रचार ने शिक्षितों में यह भाव गहरा कर दिया है कि समाज की प्रत्येक विषमता, विपदा और विकृति को हटाने का दायित्व सरकार का है। सरकार ही तारणहार है, वही मसीहा है, वही पैगंबर है। वही चमत्कारिक शक्ति है। वस्तुत: शिक्षा और मीडिया पर 1950 से ही जवाहरलाल नेहरू की पहल से सोवियत आस्था और सोवियत मॉडल छा गए। इसके कारण शिक्षित भारतीयों के बीच हिस्से के शासन और मीडिया द्वारा प्रचारित बातें पूर्णत: सत्य प्रतीत होती हैं। इस अवधि में यह प्रयास भी किया गया कि शिक्षा संस्थानों में विचार का काम न हो, केवल किसी न किसी राष्ट्रीय नेता या पार्टी के विचारों को फैलाने का काम हो। स्पष्ट रूप से यह सोवियत मॉडल ही था, पर भारत में शिक्षित लोग या तो यह जानते ही नहीं, या याद नहीं रखते। मान लिया गया है कि यह तो स्वाभाविक है, सरकार की तो ड्यूटी है गरीबी मिटाना। निरंतर झूठे प्रचार ने सच के प्रति आंखें बंद कर दी हैं।

गरीबी मिटाना सरकारों के वश में नहीं। यह विश्वव्यापी तथ्य है कि कहीं भी किसी भी सरकार ने आज तक गरीबी नहीं मिटाई है। गरीबी अगर किसी समाज में नहीं है या बहुत कम है, तो उस समाज की व्यवस्था, संरचना और परंपराओं के कारण। सरकार तो परंपराओं की रक्षा मात्र करती है या फिर नहीं करती। सरकारों में गरीबी हटाने का सामर्थ्य संभव ही नहीं है। सरकार अपने कर्मचारियों, अधिकारियों और अपने कृपा-पात्रों और चाटुकारों को कुछ धन तो दे सकती है, उन्हें मालामाल भी कर सकती है, पर संपूर्ण समाज की गरीबी यानी समाज के सभी गरीबों की गरीबी हटाना संसार में आज तक किसी भी सरकार के वश में नहीं रहा है और न ही हो सकता है। सरकार केवल आर्थिक न्याय के लिए आवश्यक कदम उठा सकती है। अगर वे कदम गंभीरता से उठाए जाएं और उनमें समाज का सहयोग लिया जाए तो आर्थिक न्याय संभव है।

संविधान में भी भाग-4 में राजकीय नीति के निदेशक सिद्धांतों में यही लिखा है कि 'राज्य लोगों के कल्याण के प्रोत्साहन के लिए एक सुसंगत समाज व्यवस्था सुनिश्चित करने की दिशा में काम करेगा।' सन 1978 में जो 44 वां चौवालीसवें संशोधन में इसमें यह प्रावधान जोड़ा गया कि 'राज्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय को राष्ट्र-जीवन के सभी क्षेत्रों में मान्य बनाने वाली समाज व्यवस्था संभव बनाने और उसका संरक्षण करने के लिए जितना संभव हो, उतने प्रभावशाली कदम उठाएगा, ताकि लोगों के कल्याण को प्रोत्साहन मिले।' संवैधानिक प्रावधान आज भी इतना ही है, पर राजनीतिक लफ्फाजी दूसरी तरह की चलती रहती है।

गरीबों को राजनीतिक चर्चा का केंद्रीय विषय यूरोप में समाजवादियों और कम्युनिस्टों ने बनाया। उसका कारण यह था कि चर्च ने गरीबी को अत्यधिक गरिमामंडित कर रखा था और ईसा के नाम पर वे ज्यादा प्रचार इसी बात का करते थे कि स्वर्ग में धनियों का प्रवेश कभी नहीं हो सकता और गरीबों के द्वार स्वर्ग के लिए खुले हैं। गरीब होना 'गॉड' की कृपा है। 'गॉड' अपने भक्तों की परीक्षा लेते हैं कि यह कष्ट सहन का सामर्थ्य रखता है या नहीं। क्योंकि कष्ट सहन (सफरिंग) चर्च के अनुसार बहुत बड़ा गुण है।

इस प्रचार का अपने राज्य के लि महत्त्व समझ कर यूरोप के अनेक राजाओं ने नौवीं से सोलहवीं शताब्दी तक अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग समय पर ईसाइयत का बपतिस्मा लिया और फिर किसी न किसी चर्च को अधिकृत राजकीय संरक्षण दिया ताकि प्रजा में उभरे विद्रोहों का शमन रेलिजिन के द्वारा होता रहे। गरीबों में कष्ट-सहन (सफरिंग) और आज्ञाकारिता (ओबडिएंस) बहुत बड़े गुण माने जाने लगे।

मगर इससे दरिद्रता और कंगाली और भुखमरी का विशाल साम्राज्य चारों ओर छिपा नहीं छिपा। क्योंकि ठंडे और दलदली यूरोपीय इलाकों में जीवन के साधन अत्यंत सीमित थे और जीवन अतिशय कठिन था।

विज्ञान ने थिऑलॉजी (चर्च सिद्धांत) को झूठा साबित किया। यूरोपीय नवजागरण के बाद मध्ययुगीन ईसाइयत के विरुद्ध प्रचंड विद्रोह हुआ। और इसी अवधि में चीन और भारत से प्रेरित होकर यूरोप के प्रतिभाशालियों ने वैज्ञानिक अनुसंधान शुरू किए। चर्च ने उन्हें थिइस्ट कहा। क्योंकि वे किसी भी थिआलॉजी को नहीं मानते थे। अज्ञानियों ने भारत में इसका अनुवाद 'नास्तिक' कर रखा है। जबकि थिइस्ट का सही अनुवाद है- असांप्रदायिक या असंकीर्ण। इस प्रकार वस्तुत: थिइस्ट विवेकनिष्ठ लोग होते हैं। वे किसी ईसाई थिऑलॉजी को ज्ञान का एकमात्र स्रोत नहीं मानते। वे विवेक और अनुसंधान और जिज्ञासा में श्रद्धा रखते हैं।

यूरोप के लगभग सभी बड़े वैज्ञानिक सच्चे अर्थों में आस्तिक रहे हैं, वे परम चैतन्य सत्ता में श्रद्धा रखते रहे हैं। पर वे किसी भी ईसाई चर्च की किसी थिऑलॉजी में श्रद्धा नहीं रखते थे, क्योंकि वह उन्हें अंधविश्वास दिखती थी। इन्हीं वैज्ञानिकों और विज्ञान के प्रशंसकों ने ईसाई आस्थाओं की धज्जियां उड़ाईं और इस तथ्य को सार्वजनिक किया कि रेलिजिन के नाम पर चर्च केवल गरीबी और कंगाली को बढ़ावा देता है। यह स्थिति उन लोगों को नितांत अमानवीय लगी। इस बीच न्यूटन आदि वैज्ञानिकों की खोज से यूरोप के प्रबुद्ध लोग अत्यधिक उत्साहित हुए। और उनकी यह श्रद्धा जगी कि मनुष्य भी एक यंत्र जैसा ही है, शरीर और मन के नियमों को यांत्रिक नियमों की ही तरह जाना जा सकता है और उनका उपयोग बेहतर जीवन के लिए किया जा सकता है।

'गॉड' का स्थान 'स्टेट' को दे दिया। इस बीच यूरोप में चर्च के विरुद्ध राष्ट्र-राज्य की अवधारणा उन्नीसवीं शताब्दी में पहली बार दृढ़ हुई। इसलिए प्रबुद्ध लोगों के एक बड़े वर्ग को लगा कि राज्य ही उस बेहतर मानवीय जीवन का एकमात्र माध्यम हो सकता है। पहले चर्च लोगों के जीवन की समस्त समस्याओं के समाधान का दावा करता था, इसलिए अब राज्य द्वारा यूरोप में वे ही दावे किए जाने लगे। विज्ञान की प्रेरणा से लोग चर्च की मान्यताएं ठुकराने लगे। गरीबी और कष्ट सहन के गुण मानना बंद कर दिया। इन्हें चर्च की व्यवस्था के परिणाम माना जाने लगा। इसे बदलना श्रेष्ठ लक्ष्य माना गया है। वही राज्य का कर्तव्य भी माना गया।

राज्य के प्रति उभरी यह प्रचंड भक्ति चर्च के प्रति आस्था का स्थान लेने लगी। इसमें वैसा ही प्रचंड आवेग था जैसा नौवीं से सोलहवीं शताब्दी तक यूरोप के लोगों में चर्च के प्रति था। इसलिए उनमें से अधिकतर का इस ओर ध्यान ही नहीं गया कि राज्य वस्तुत: व्यक्तियों का ही तो एक विशिष्ट संगठन है, जो अन्य व्यक्तियों के जीवन पर प्रभाव और नियंत्रण रखता है। यह नियंत्रण उनकी सहमति से ही संभव है। पहले का रेलिजिस आधार अब समाप्त था इसलिए नियंत्रण की सहमति पाना कठिन हो गया। इसके लिए राज्य को दंड के विशिष्ट अधिकार देने के पक्ष में अनेक तर्क अलग-अलग लोगों ने रचे। उनमें से कम्युनिस्ट तर्क यह रखा गया कि सभ्यताओं का विकास वर्ग संघर्ष से हुआ है और औद्योगिक विकास के अंतिम चरण में सर्वहारा की क्रांति से सर्वहारा की तानाशाही स्थापित होगी और वर्ग शत्रुओं का सफाया होगा, इसमें राज्य की निर्णायक भूमिका है।

ऐसे कठोर और दंड-प्रधान राज्य के पक्ष में वातावरण बनाने के लिए उसके कल्याणकारी पक्ष का झूठ से भरा अतिशय महिमामंडन किया गया। इसके साथ

गॉड के स्थान पर राज्य को लाने के कारण लोगों के दुख और अभाव और गरीबी और समस्याएं दूर करने का दायित्व भी राज्य का ही बताया गया और यह प्रचारित किया गया कि राज्य यह काम वैसी ही सरलता से कर सकता है, जैसा गॉड कर सकता है। दिक्कत यह है कि भारत में यह तथ्य खुल कर किसी भी कम्युनिस्ट बुद्धजीवी ने रखने का साहस नहीं किया। आधुनिक शिक्षित भारतीय इन बातों को प्रजापालन के सनातन राजधर्म का अंग समझते हैं, जबकि दोनों बातें नितांत भिन्न हैं। उनके पीछे का विचार और दृष्टि अत्यंत भिन्न है।

भारत जैसे हजारों वर्षों से विकसित समाजों में ये तथ्य सर्वज्ञात रहे हैं। इसलिए राजकोष के विषय में यहां विस्तार से चिंतन हुआ और साथ ही राज्य के कर्तव्यों के विषय में भी वाल्मीकीय रामायण, महाभारत से लेकर अर्थशास्त्र, शुक्रनीति आदि अनेक ग्रंथों में और पुराणों में इन पर चिंतन हुआ। तदनुसार समाज में सुव्यवस्था और शांति बना। रखना ही राज्य का मुख्य कार्य है। सीमाओं की सुरक्षा और विस्तार भी राज्य का एक मुख्य कार्य माना जाता रहा है। सुव्यवस्था समाज के नियमों और मर्यादा के पालन से रहती है।

राज्य तो समाज से धन लेता है, देगा कहां से। राज्य के पास धन आने के स्रोत सीमित हैं। उनके द्वारा राज्य अपने आवश्यक कर्तव्य भलीभांति निभा ले, यही बहुत है। राज्य गरीबी कैसे मिटाएगा? क्या सरकारी खजाने से मनमाने अनुदान देकर? भारतीय परंपरा में दान की प्रेरणा समाज को दी जाती रही है। अपनी ही संपत्ति का दान देना दान कहलाता है। समाज से टैक्स वसूल कर राज्य दान दे तो वह दान नहीं कहलाएगा।

पुराने राजा जो दान करते थे, वे अपनी संपत्ति और राजकोष के दान के लिए। निर्धारित भाग से ही करते थे। उसकी सीमा है। अगर राज्य सुरक्षा, शांति, सुव्यवस्था और बेहतर पैमाने के सार्वजनिक कार्यों के अतिरिक्त अन्य दायित्व लेगा, तो इसके लिए उसे बहुत ज्यादा धन चाहिए, जिसका अर्थ है कि वह बहुत ज्यादा टैक्स वसूल करेगा या लोगों की संपत्ति छीनेगा।

कम्युनिस्ट व्यवस्था में संपत्तिवान लोगों को वर्ग शत्रु घोषित कर उनकी संपत्ति छीनने की व्यवस्था है। पर सभी को पता है कि सत्तर वर्ष से अधिक के कम्युनिस्ट शासन के बाद सोवियत संघ में गरीबी न तो मिटी और न ही घटी। बल्कि बढ़ी। जब गोर्बाचोव की पहल से कम्युनिज्म का विसर्जन किया गया, तब यह सत्य सामने आया कि सोवियत संघ में करोड़ों लोग कूड़े के ढेरों से ब्रेड के टुकड़े ढूंढ-ढूंढ कर गुजर-बसर कर रहे हैं। किसानों और नागरिकों की संपत्ति छीन कर सोवियत राज्य उसका एक बड़ा हिस्सा युद्ध की तैयारी और सेना में लगाता था और शेष रकम कम्युनिस्ट पार्टी के अधिकारियों की विलासिता में खर्च होती थी। आज वे तथ्य जगजाहिर हैं। इसलिए राज्य द्वारा गरीबी मिटा सकने का दावा कम्युनिस्ट शासन में पूरी तरह फेल हुआ है।

तथ्य तो यह है कि आज तक कभी भी विश्व में कहीं भी सरकारों ने गरीबी नहीं मिटाई है। वह संभव ही नहीं है। सरकार गरीबी मिटाने के विभिन्न प्रयासों के लिए समाज को प्रेरित कर सकती है, ऐसे कार्यों के संरक्षण और प्रोत्साहन दे सकती है। ऐसे सभी कामों में धर्माचार्यों या धर्म-क्षेत्र के प्रतिष्ठित लोगों का सहयोग सहायक होगा। शुरू में नेहरू ने भूमि वितरण का अपना लक्ष्य पाने के लिए आचार्य विनोबा भावे का सहयोग लिया ही था। इसके लिए किसी ऐसे समाज में, जहां संपन्न लोगों की संख्या अच्छी-खासी हो, गरीबी के मूल कारण को समझना पड़ेगा।

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta